जन्म शताब्दी पुस्तकमाला- 8

धर्मतंत्र का दुरुपयोग रुके

(प्रवचन)

- श्रीराम शर्मा आचार्य

धर्मतंत्र का दुरुपयोग रुके

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ बोलिए—

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।

देवियो, भाइयो!

भगवान के मंदिर जगह-जगह बनाए जाएँ, यह विचार उस समय उत्पन्न हुआ, जब भगवान की विचारणा को जनमानस में स्थापित करने, भगवान की प्रेरणाओं को सर्वत्र प्रकाशित करने की आवश्यकता अनुभव की गई। भगवान सब जगह विराजमान हैं। पेड़-पत्तों से लेकर फूल-पौधों तक और मनुष्य के हृदय से लेकर इस आसमान तक, कोई भी स्थान ऐसा नहीं है, जहाँ वे विद्यमान न हों। फिर भगवान को एक स्थान पर बिठाने और खाना खिलाने की क्या जरूरत पड़ गई? यह विचारणीय प्रश्न है। भगवान तो बादलों को बरसाते हैं। जरूरत पड़े, तो जहाँ कहीं वर्षा हुआ करे,

वहाँ जा बैठें और फुहारों का आनंद ले लें। नहाने की उनको क्या दिक्कत पड़ेगी? नदियाँ उनकी बहती हैं। जब कभी स्नान करना पड़े, घंटों नहा सकते हैं। उनको कोई रोकने वाला है क्या? फिर भगवान को स्नान कराने की क्या जरूरत थी?

मित्रो! भगवान तो एक विचारणा है, भावना है, एक चेतना है। उनको एक जगह बिठाया जाए, ये कैसे मुमकिन हो सकता है? भगवान की वृत्तियों और प्रवृत्तियों को हम लोग भूल गए हैं। उनको स्मरण दिलाने के लिए ही मंदिर, चेतना केंद्र बनाए गए हैं, जिनके माध्यम से भगवान की वृत्तियों को सर्वसाधारण के मनों तक पहुँचाना संभव हो सकेगा। गाँवों में देवालय इसीलिए बनाए गए हैं कि जो लोग भगवान को भूल गए हैं, वे इस माध्यम से अपने जीवन लक्ष्य को पहचानें। लोग भगवान का नाम तो जानते हैं कि भगवान कृष्ण होते हैं, भगवान राम होते हैं, हनुमान होते हैं, लेकिन सही बात यह है कि भगवान के स्वरूप, उनके

आदेश, उनकी शिक्षाओं और मानव जीवन से उनका संबंध, इन सबको सौ फीसदी लोग भूल गए हैं। यदि वे भूले न होते तो उनने अपने जीवन लक्ष्य को याद रखा होता और यह स्मरण रखा होता कि भगवान ने इंसान को दुनिया में किसलिए भेजा है? उसके ऊपर क्या जिम्मेदारियाँ सौंपी हैं? भगवान ने मनुष्य से क्या उम्मीदें की हैं?

मित्रो! भगवान तो हृदय में, घट-घट में समाया हुआ है और वह मनुष्य के द्वारा अच्छी वृत्तियों को पूरा किया जाना देखना चाहता है। अगर ये बातें मनुष्य को याद नहीं हैं, उसे केवल किसी मंदिर की मूर्ति की शक्ल भर याद रहती है, तो कैसे कहा जाए कि इस आदमी को भगवान याद है और वह भगवान को भूला नहीं है? साथियो! लोग भगवान को भूलते जा रहे थे और भूल रहे हैं। इसीलिए उनको स्मरण दिलाए रखने के लिए मंदिरों की स्थापना की गई, ताकि जब कभी भी आदमी उधर से निकले, तो प्रणाम करे,

दंडवत करे और सुबह-शाम उनका दर्शन करे, ताकि उसे याद आए कि कोई भगवान नाम की सत्ता भी है और वह मनुष्य के जीवन से अविच्छिन्न रूप से जुड़ी हुई है। मनुष्य जीवन के विकास के लिए, जीवन में सुख-शांति की स्थापना करने के लिए भगवान की सहायता और भगवान के सहयोग की नितांत आवश्यकता है। यह सिद्धांत और आवश्यकता मनुष्य को अनुभव होती रहे, इसलिए हर जगह मंदिर बनाए गए।

लोकशिक्षण जनजागृति हेतु बने थे मंदिर

मित्रो! उससे भी एक और बड़ा सामाजिक कारण यह था कि प्रत्येक गाँव और गली-मोहल्ले के लिए ऐसी आवश्यकता अनुभव की गई कि इन स्थानों पर सत्प्रवृत्तियाँ एवं सद्भावनाएँ फैलाने के लिए, रचनात्मक कार्यों को दिशा देने के लिए ऐसे स्थान होने ही चाहिए, जहाँ अनेकानेक प्रकार की प्रवृत्तियों का संचालन किया जा सके। उदाहरण के लिए कथा के द्वारा लोक-शिक्षण जितनी अच्छी

तरह किया जा सकता है, उतना और किसी तरीके से नहीं। इसमें मनोरंजन भी है, इतिहास भी है और आनंद भी है। साथ-ही-साथ इसमें ऊँचे विचार एवं शिक्षाएँ भी जुड़ी हुई हैं। इस तरह से कथाएँ कहकर के जनता को उत्साह और मनोरंजन के साथ सन्मार्गगामी बनाया जा सकता है।

प्राचीनकाल में मंदिरों में कथाएँ होती थीं, संगीत का शिक्षण होता था और वह कीर्तन के माध्यमों से लोकगायन और लोकमंगल की शिक्षाओं के केंद्र बने रहते थे। मंदिरों के साथ पाठशालाएँ जुड़ी रहती थीं, पुस्तकालय जुड़े रहते थे। मंदिरों में सत्संग की व्यवस्था होती थी। मंदिरों के आस-पास व्यायामशालाओं की भी व्यवस्था थी। कहने का अर्थ यह है कि असंख्य रचनात्मक प्रवृत्तियों का एक ही केंद्र उस जमाने में था, जिसको हम कहते हैं—मंदिर। उन दिनों मंदिरों में जो कार्यकर्त्ता काम करते थे, वे बड़े प्रभावी, लोकसेवी होते थे। लोकसेवियों को जीविका की भी आवश्यकता

है। लोकसेवी काम करे और खाने का प्रबंध न हो सके, तो काम कैसे चलेगा? इसी तरह यदि खाने का प्रबंध और गुजारे की व्यवस्था किसी को वेतन के रूप में लोग दें, तो लेने वाले का भी असम्मान होता है और देने वाले को अहंकार पैदा होता है।

इसलिए मित्रो! विचार ये किया गया कि उस गाँव में काम करने वाले लोकसेवियों को गुजारा निर्वाह करने की व्यवस्था के लिए भगवान का भोग लगाया जाए। थाली भरकर सवेरे का भोग लगा दिया और थाली भरकर शाम को भोग लगा दिया। एक आदमी के गुजारे का प्रबंध हो गया। दोनों वक्त का भोजन मिल गया। लोगों ने यह समझा कि हमने भगवान को खाना खिलाया और सेवा करने वाले व्यक्ति ने समझा कि हमारे गुजारे का प्रबंध हो गया। असम्मान भी नहीं हुआ और किसी के ऊपर प्रत्यक्ष रूप से दबाव भी नहीं पड़ा। इस तरीके से मंदिरों में भगवान के जो खाने-

पीने की व्यवस्था थी, वास्तव में वह वहाँ के कार्यकर्त्ता के लिए भोजन की व्यवस्था थी। लोग भगवान के पास दक्षिणा चढ़ाया करते थे, पैसा चढ़ाया करते थे। वे चढ़ावे की चीजें सिर्फ एक ही काम आती थीं कि उस क्षेत्र में सेवाकार्य करने वाले लोगों के गुजारे तथा मंदिर की देखभाल का प्रबंध इस तरीके से हो जाता था।

लोकसेवियों की आवश्यकता पूर्ति था एक प्रयोजन

साथियो! लोकसेवी तो हर जगह होने ही चाहिए। लोकसेवियों के बिना सत्प्रवृत्ति का विकास कैसे हो सकता है? इसलिए पहले हर गाँव में कितने ही लोकसेवी रहते थे और एकदूसरे के गाँव में परिभ्रमण करते रहते थे। परिभ्रमण करने वाले ऐसे लोकसेवियों को संत-महात्मा भी कहा जा सकता है, विद्वान भी कहा जा सकता है, वे जब कभी भी आते थे, तो उनके ठहरने के लिए डाकबंगला चाहिए, धर्मशाला चाहिए। यह कहाँ

से आए? इसलिए मंदिरों में इतनी गुंजाइश रखी जाती थी कि कभी दस-पाँच आदमी बाहर से आ जाएँ, तो उनके भी ठहराने और खाने-पीने का प्रबंध कर दिया जाए। इस तरीके से किसी जमाने में सत्प्रवृत्तियों के केंद्र मंदिर थे। मंदिरों को इसीलिए बनाया गया था। भगवान की पूजा-अर्चना भी हो जाती थी, साथ ही भगवान को याद करने के बहाने से आस्तिकता का प्रचार भी होता था।

मित्रो! ये सब बातें ठीक हैं, परंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि भगवान को उन सब चीजों की आवश्यकता थी, उनके बिना भगवान का कोई काम रुका पड़ा था। आरती अगर न उतारी जाए, तो भगवान नाखुश हो जाएँ, या उनका काम हरज हो जाए, ये कैसे हो सकता है? सूर्यनारायण और चंद्रमा भगवान की हर वक्त आरती उतारते रहते हैं। नवग्रहों से लेकर के तारामंडलों द्वारा हर क्षण उनकी आरती होती रहती है। फिर हमारे छोटे-से

दीपक की क्या कीमत हो सकती है? फूल सारे विश्व में उन्हीं के उगाए हुए हैं, चंदन के पेड़ उन्हीं ने उगाए हैं। फूल और चंदन अगर भगवान को नहीं मिलते, तो भगवान का क्या हरज था? मिठाई या भोजन भगवान को नहीं मिलता, तो क्या हरज था? राई के बराबर भी कुछ हरज नहीं था। भगवान को खाने-पीने की और पहनने-ओढ़ने की वास्तव में कतई जरूरत नहीं है।

ये सब चीजें भगवान को मंदिरों के माध्यम से जो भगवान के निमित्त चढ़ाई जाती हैं, उनके पीछे सिर्फ एक ही उद्देश्य छिपा था कि लोकसेवी को, जो एक तरीके से भगवान के प्रतिनिधि कहे जा सकते हैं। जिन्होंने अपने व्यक्तिगत स्वार्थों की तिलांजलि दी और अपनी व्यक्तिगत सुविधाओं को ताक पर रख दिया। जिन्होंने केवल लोकमंगल का ही ध्यान रखा, केवल भगवान के संदेशों का ही ध्यान रखा, भगवान का प्रतिनिधि न कहें तो क्या कहें? भगवान के प्रतिनिधियों को जीवनयापन

करने के लिए निवास से लेकर भोजन, वस्त्र तक और दूसरी चीजों के खरच की आवश्यकता के लिए मंदिरों को बनाया गया। यह एक मुनासिब क्रम था।

मंदिर वस्तुतः जन-जागरण के केंद्र थे। इसकी पुनरावृत्ति एक बार फिर बढ़िया ढंग से की गई। सिक्खों के गुरुद्वारों को आप देखते हैं। किसी जमाने में जब मुगल शासकों का दबदबा बहुत ज्यादा था, अत्याचार भी बहुत होते थे, तब सिक्खों के गुरुद्वारे में जहाँ एक ओर भगवान की भक्ति की बात होती थी, वहीं दूसरी ओर इस बात को भी स्थान दिया गया कि एक हाथ में माला और दूसरे हाथ में भाला लेकर के सिख धर्म के अनुयायी खड़े हों और समाज में जो अनीति फैली हुई है, उसका मुकाबला करें। मंदिर थे, गुरुद्वारे थे, पर तब उनमें लोकसेवा की, लोकमानस के परिष्कार की कितनी तीव्र प्रक्रिया विद्यमान थी।

मित्रो! समर्थ गुरु रामदास ने भी यही किया था। जब अपना देश बहुत दिनों तक पराधीन हो गया, तो उन्होंने देखा कि जनता को संघबद्ध करने के लिए, जनता को दिशा देने के लिए और जन-सहयोग का केंद्रीकरण करने के लिए कोई बड़ा काम किया जाना चाहिए। समर्थ गुरु रामदास ने महाराष्ट्र भर में घूम-घूमकर सात सौ महावीर मंदिर बनाए। वे मंदिर केवल हनुमान जी को मिठाई या चूरमा-लड्डू खिलाने के लिए नहीं बनाए गए थे। हनुमान जी तो पेड़ पर चढ़कर भी अपना फल खाकर भी रह सकते हैं। उन्हें क्या गरज पड़ी है कि वे किसी का चूरमा और लड्डू खाएँ? वे तो अपने हाथ-पाँव से मेहनत करके खुद खा सकते हैं और सैकड़ों बंदरों को भी खिला सकते हैं। वे किसी का लड्डू और चूरमा खाने के लिए भूखे कहाँ थे? लेकिन महावीर मंदिर, जो जगह-जगह सारे महाराष्ट्र में समर्थ गुरु रामदास के द्वारा बनाए गए,उसका एक ही उद्देश्य था कि इनमें जो काम

करने वाले व्यक्ति हैं, वे जनता से सीधा संपर्क बनाएँ। उन सात सौ महावीर मंदिरों में ऐसे तीखे और भावनाशील पुजारी रखे गए, जिन्होंने गाँव को ही नहीं, पूरे इलाके को जगा दिया। वह सात सौ इलाकों में बँटा हुआ महाराष्ट्र एक तरीके से संगठित होता हुआ चला गया।

समर्थ के मंदिर व्यायामशालाएँ

साथियो! समर्थ गुरु रामदास ने छत्रपति शिवाजी के सिर पर हाथ रखा और कहा कि भारतीय स्वाधीनता के लिए, भारतीय धर्म की रक्षा करने के लिए तुम्हें बढ़-चढ़कर काम करना चाहिए। शिवाजी ने कहा कि मेरे पास वैसी साधन सामग्री कहाँ है? मैं तो छोटे से गाँव का एक अकेला लड़का, इतने बड़े काम को कैसे कर सकता हूँ। समर्थ गुरु रामदास ने कहा, "मैंने पहले से ही उसकी व्यवस्था सात सौ गाँवों में महावीर मंदिर के रूप में बनाकर के रखी है। जहाँ जनता में काम करने वाले बड़े प्रकांड, समझदार एवं मनस्वी लोग

काम करते हैं।" पुजारी पद का अर्थ मरा हुआ आदमी, बीमार, बुड्ढा, निकम्मा, बेकार और नशेबाज आदमी नहीं है। पुजारी का अर्थ-जिसे भगवान का नुमाइंदा या भगवान का प्रतिनिधि कहा जा सके। जहाँ ऐसे समर्थ व्यक्ति हों, समझना चाहिए, वहाँ पुजारी की आवश्यकता पूरी हो गई।

मित्रो! किसी आदमी को खाना दिया जाए और वह भी आधा-अधूरा, सड़ा-बुसा हुआ दिया जाए, तो उससे खाने वाले को भी नफरत होगी और उसके स्वास्थ्य की रक्षा भी नहीं होगी। इसी तरीके से भगवान की सेवा करने के लिए लँगड़ा-लूला, काना-कुबड़ा, मरा, अंधा, बिना पढ़ा, जाहिल-जलील, गंदा आदमी रख दिया जाए, तो वह क्या कोई पुजारी है? पुजारी तो भगवान जैसा ही होना चाहिए। भगवान राम के पुजारी कौन थे? हनुमान जी थे। अतः कुछ इस तरह का पुजारी हो, तो कुछ बात भी बने। इसी तरह के पुजारी समर्थ गुरु रामदास ने सारे-के-सारे महाराष्ट्र में रखे थे।

इन सात सौ समर्थ पुजारियों ने उस इलाके में जो फिजा, वो परिस्थितियाँ पैदा कीं कि छत्रपति शिवाजी के लिए जब सेना की आवश्यकता पड़ी, तो उन्हीं सात सौ इलाकों से बराबर उनकी सेना की आवश्यकता पूरी की जाती रही।

इसी प्रकार जब उनको पैसे की आवश्यकता पड़ी, तो उन छोटे-से देहातों से, जिनमें कि महावीर मंदिर स्थापित किए गए थे, वहाँ से पैसे की आवश्यकता को पूरा किया गया। अनाज भी वहाँ से आया। उसी इलाके में जो लोहार रहते थे, उन्होंने हथियार बनाए। इस तरह जगह-जगह छिटपुट हथियार बनते रहे। अगर एक जगह पर हथियार बनाने की बड़ी फैक्ट्री होती, तो शायद विरोधियों को पता चल जाता और उन्होंने उस स्थान को रोका होता। वे सावधान हो गए होते। मिलिट्री एक ही जगह रखी गई होती, तो विरोधियों को पता चल जाता और उसे रोकने की कोशिश की गई होती, लेकिन सात सौ गाँवों में पुजारियों के

रूप में एक अलग तरह की छावनियाँ पड़ी हुई थीं। हर जगह इन सैनिकों को ट्रेनिंग दी जाती थी। हर जगह इन छावनियों में १०-२० वालंटियर आते थे और वहीं से पैसा धन व अनाज आता था। इस तरीके से मंदिरों के माध्यम से समर्थ गुरु रामदास ने छत्रपति शिवाजी को आगे करके इतना बड़ा काम कर दिखाया।

मूल उद्देश्य हम भूल गए

मित्रो! मंदिर जन-जागरण के केंद्र बनाए जा सकते हैं। मंदिरों का उपयोग लोकमंगल के लिए किया जा सकता है, क्योंकि उसके पास इमारत होती है। इमारत तो हर सेवा केंद्र के पास होनी चाहिए, परंतु इसके अलावा वह व्यवस्था भी होनी चाहिए, जिससे कि उस क्षेत्र के कार्यकर्त्ताओं का, निवासियों का, गुजारे का प्रबंध किया जा सके। इस गुजारे का प्रबंध तभी हो सकता है, जब आजीविका के स्रोतों से जनता में इसके लिए त्यागवृत्ति पैदा की जा सके। मनुष्य में यह भावना

पैदा की जा सके कि हमने भगवान को दिया है, तुमको नहीं। इससे आदमी का मन हलका होता है। त्याग और सेवा की वृत्ति पैदा होती है। उस धन के एक केंद्र पर इकट्ठा होने से समाज के लिए उससे उपयोगी काम किए जा सकते हैं।

प्राचीन काल में मंदिर इसी उद्देश्य से बनाए गए थे। समाज में सत्प्रवृत्तियों का विकास वास्तव में भगवान की सेवा का एक बहुत बड़ा काम है, लेकिन आज मैं क्या कहूँ, मंदिरों को देखकर रोना आता है। आज मंदिर पर मंदिर बनते चले जा रहे हैं। करोड़ों रुपया खरच होता है। क्या ऐसा संभव नहीं था कि करोड़ों रुपयों से बनने वाली इमारतों को इस ढंग से बनाया गया होता कि वहाँ लोकसेवा की प्रवृत्तियों के लिए गुंजाइश रहती और भगवान के निवास की भी एक छोटी-सी जगह बना दी गई होती। अब तो सारी-की-सारी इमारतें इस काम के लिए बनाई जाती हैं कि उसमें केवल भगवान ही बैठें। भगवान को इतनी जगह की क्या

जरूरत है? भगवान को चाहो, तो एक कोने में बिठा दो, तो भी वे मौज करेंगे। भगवान को इतने बड़े भव्य निर्माण से क्या लेना-देना? उनके लिए तो इतना बड़ा आसमान विद्यमान है।

लोकसेवा की प्रवृत्तियों का केंद्र हो मंदिर

मित्रो! मंदिरों की इमारतों को अगर इस ढंग से बनाया गया होता कि जिनमें मंदिर के साथ-साथ पाठशाला, प्रौढ़ पाठशाला, संगीत विद्यालय, वाचनालय और कथा-कीर्तन का कक्ष भी बना होता; उसके आस-पास व्यायामशाला भी होती और थोड़ी-सी जगह में चिकित्सालय का भी प्रबंध होता; बच्चों के खेलने की भी जगह होती। इस तरीके से लोकमंगल की, लोकसेवा की अनेक प्रवृत्तियों का एक केंद्र अगर वहाँ बना दिया गया होता और वहीं एक जगह भगवान की स्थापना होती, तो जो धन मंदिरों में चढ़ाया जाता है, उसका ठीक तरीके से उपयोग होता। ऐसी स्थिति में मंदिरों के द्वारा कितना बड़ा लाभ होता।

साथियो! आपने गिरजाघरों को देखा है। गिरजाघरों में भगवान के लिए कोई गुंजाइश नहीं है क्या? वहाँ कहीं-कहीं मरियम की मूर्ति लगी रहती है, तो कहीं-कहीं ईसा की प्रतिमा लगी रहती हैं। एक छोटा-सा प्रार्थनाकक्ष होता है। कहीं इसमें अस्पताल या दवाखाने वाला हिस्सा होता है। कहीं पादरियों के रहने का हिस्सा होता है। कहीं एक छोटा-सा दफ्तर बना होता है। इस तरह भगवान का एक छोटा-सा केंद्र बनाने के बाद में बाकी सारी-की-सारी इमारत, सारा स्थान लोकमंगल के लिए होता है। पहले भारतवर्ष में भी ऐसा ही किया जाता था और किया भी जाना चाहिए, लेकिन आज तो मंदिरों की दशा देखकर हँसी आती है और क्रोध भी। आज मंदिरों का सारा-का-सारा धन कुछ चंद लोगों के निहित स्वार्थ के लिए खरच हो जाता है। जो कुछ भी चढ़ावा या दान आया, कुछ निहित स्वार्थ के लिए मठाधीशों और मंदिरों के स्वामी और दूसरे महंतों के पेट में चला गया।

अनाचार एवं अज्ञान के केंद्र हैं ये

मित्रो! वह अनावश्यक धन, हराम का धन जब उन लोगों के पास आया तो उन्होंने क्या-क्या किया? आप नहीं जानते, मैं जानता हूँ। पंडा-पुजारियों, महंतों और मठाधीशों की हकीकत मुझे मालूम है, आपको नहीं मालूम है। आप तो केवल उनकी बाहर की शकल जानते हैं। मुझे उनके पास रहने का मौका मिला है। मैं जानता हूँ कि समाज में खराब-से-खराब किस्म के तबके अगर हैं, तो उनमें से एक तबका इन लोगों का भी है, जो धर्म का कलेवर या धर्म का दुपट्टा ओढ़े हुए हैं। धर्म का झंडा गाड़े हुए हैं और धर्म का तिलक लगाए हुए हैं। धर्म की पोशाक और धर्म का बाना पहने हुए बैठे हैं। ये क्या-क्या अनाचार फैलाते हैं और क्या-क्या दुनिया में खुराफातें पैदा करते हैं, इनके निहित स्वार्थों को पूरा करने के लिए आज का धर्मतंत्र है—मंदिर।

तो क्या मंदिर सिर्फ इसी काम के लिए है? क्या इन परिस्थितियों को बदला नहीं जाना चाहिए? हाँ, अगर हमको समाज में ढोंग, अनाचार और अज्ञान फैलाना हो, तो मंदिरों का यही रूप बना रहने देना चाहिए। अगर हमको यह ख्याल है कि जनता का इतना धन, जनता की इतनी श्रद्धा, जनता का इतना पैसा—इन सब चीजों का ठीक तरीके से उपयोग किया जाए, तो आज के जो मंदिर हैं, उनकी व्यवस्था पर नए ढंग से विचार करना पड़ेगा। जिन लोगों के हाथ में उनका नियंत्रण है, उनको समझाना पड़ेगा और कहना पड़ेगा कि लोक मंगल के लिए आप इनका इस्तेमाल क्यों नहीं करते? ट्रस्टियों को समझाया जाना चाहिए। अगर उनकी समझ में यह बात आ जाए कि मंदिर में जितना धन लगा हुआ है, इसमें से थोड़े पैसे से भगवान की पूजा आसानी से की जा सकती है। एक पुजारी ने आधा घंटे सुबह और आधा घंटे शाम को पूजा कर

ली। एक घंटे के बाद तेईस घंटे बच जाते हैं। नहीं साहब तेईस घंटे पुजारी पंखा लिए खड़े रहेंगे। जब भगवान सो जाएँगे, तो वे वहाँ से हटेंगे और जब भगवान उठ जाएँगे, तो फिर पंखा डुलाते रहेंगे। यह कोई तरीका है?

जनश्रद्धा का दुरुपयोग न हो

मित्रो! हम अपने ढंग से भगवान को बेकार आदमी जैसा बनाते हैं। अगर भगवान सोया करेंगे तो सूरज, चाँद कैसे उगेगा? हवाएँ कैसे चलेंगी? जीव-जंतु, पेड़-पौधे कैसे पैदा हो जाएँगे? भगवान सो नहीं सकता, हवा सो नहीं सकती, गरमी सो नहीं सकती। जो इस तरह की विश्वव्यापी चेतनाएँ हैं, उनको सोने से क्या मतलब! इसलिए सोने-जागने वाला जो कृत्य है, वह बच्चों का मनबहलाव जैसा है। मनबहलाव का थोड़ा-सा काम रखा जाए, तो क्या हर्ज है, लेकिन उस कार्य के लिए जो धन, पैसा, श्रम लगा हुआ है,जो व्यक्ति लगे हुए हैं, उन

सभी को लोकमंगल के लिए खरच किया जाना चाहिए। मंदिरों के जो कमेटी वाले हैं, महंत हैं, उनको विवेकशील लोगों की एक कमेटी बनाकर समझाया जाना चाहिए। अगर वे समझते नहीं हैं, तो उन्हें मजबूर किया जाना चाहिए कि मंदिर में धन तो आपने लगाया है, पर अब वह जनता का है। मंदिर का ट्रस्ट बनाने का मतलब है कि उसका स्वामित्व जनता के हाथ में चला जाता है। मंदिरों के न्यासी प्रबंधक होते हैं, स्वामी नहीं होते। वह संपत्ति जनता की मानी जाती है। जो देवालय बन गया, उसकी स्वामी जनता हो जाती है और उसका हक है कि उन लोगों को मजबूर करे और कहे कि आप इस तरीके से इस धन का अपव्यय नहीं कर सकते। जनता की श्रद्धा का गलत उपयोग नहीं किया जा सकता।

मित्रो! अपने देश में अरबों रुपया मंदिरों के नाम पर लगा हुआ है। मैं इसको अपव्यय ही नहीं,

दुरुपयोग कहता हूँ और यह कहता हूँ कि उन पुजारियों को, महंतों को यह कहा जाना चाहिए कि आप अगर अपनी श्रद्धा को कायम रखना चाहते हैं, जनता के मन पर अपनी छाप को कायम रखना चाहते हैं, तो आप लोकसेवी के तरीके से जिएँ और इस मंदिर को लोकसेवा का केंद्र बनाएँ। न तो आप भगवान के वकील हैं, न एजेंट हैं और ही नुमांइदे हैं। आप हमारे जैसे पुजारी और एक सामान्य व्यक्ति हैं।

प्रगतिशील मंदिरों की आवश्यकता

मित्रो! अब समय आ गया है,जबकि मंदिरों का स्वरूप बदल दिया जाए। नमूने के लिए अब ऐसे मंदिर बनाए जा सकते हैं, जिनमें प्रयोगशाला के तरीके से लोग देख पाएँ कि मंदिरों का सही इस्तेमाल क्या हो सकता है और क्या होना चाहिए? हमने गायत्री तपोभूमि का मंदिर लोगों के सामने एक नमूना पेश करने की खातिर बनाया है। यों तो

अपने देश में इतने सारे मंदिर हैं। भगवान तो एक ही है। उनको ही शंकर कह दीजिए, गणेश कह दीजिए, हनुमान जी कह दीजिए। अनेक भगवान नहीं हो सकते, हाँ उनके नाम अनेक हो सकते हैं। मंदिर में मूर्ति रख देना ही काफी नहीं है, वरन मूर्ति के साथ-साथ उन भगवान से संबंधित वृत्तियों को आगे बढ़ाया जाना और फैलाया जाना भी आवश्यक है। अपने यहाँ यही तो होता है। कितने कार्य होते हैं—विद्यालय वहाँ चलता है, प्रकाशन वहाँ होता है, देश भर के लिए कार्यकर्त्ता वहाँ से भेजे जाते हैं और न जाने क्या-क्या किया जाता है, लेकिन उस मंदिर तक ही हम सीमाबद्ध नहीं हैं। यदि सीमाबद्ध हो जाते, तो उसको प्रगतिशील मंदिर नहीं कहा जा सकता था। अब हमको प्रगतिशील मंदिरों की स्थापना की आवश्यकता है। समाज का नया निर्माण करने के लिए नए-नए रचनात्मक केंद्र खोले जाने चाहिए।

अध्यात्म-चेतना के विस्तार में नियोजन हो

साथियो! मंदिरों के नाम पर करोड़ों-अरबों रुपये की संपत्ति को ऐसे ही पड़ा रहने दें, यह कैसे हो सकता है! इस संपत्ति को ठीक तरीके से इस्तेमाल किया जाना चाहिए। उसके लिए समझदार लोगों कों, धार्मिक लोगों को आगे आना चाहिए और इस आवश्यकता को महसूस करना चाहिए कि यदि धर्म को जिंदा रहना है, तो वह ढोंग के रूप में नहीं जिएगा। वह केवल कर्मकांड के रूप में जिंदा नहीं रहेगा। बेशक धर्म के साथ में कर्मकांडरूपी कलेवर जिंदा रहे, लेकिन कर्मकांडों के साथ-साथ उन सत्प्रवृत्तियों को भी जीवित रखा जाना चाहिए, जिनसे लोक-मंगल की और समाज की आवश्यकताएँ पूरी होती हैं। धर्म केवल कर्मकांड नहीं हैं। धर्म केवल आडंबर नहीं है। धर्म केवल पूजा-पाठ की प्रक्रिया नहीं है, वरन इस पूजा-पाठ की प्रक्रिया और धार्मिक क्रिया-कृत्यों के पीछे और साथ-साथ में एक महती

आवश्यकता जुड़ी हुई है कि हम व्यक्ति के अंतरंग को, उसकी भावनाओं को कैसे ऊँचा उठाएँ। समाज के अंदर फैली हुई धार्मिक वृत्तियों को कैसे बढ़ाएँ। यह सारे-के-सारे क्रियाकलाप जिस माध्यम से और जिस आधार पर पूरे किए जा सकते हैं, उसके लिए कोई केंद्र या एक स्थान होना ही चाहिए। वह जगह हमारे मंदिर ही हो सकते हैं।

इन मंदिरों में पुजारी के रूप में सिर्फ लोकसेवियों की नियुक्ति हो, जिनके मन में समाज के लिए दरद है और समाज को ऊँचा उठाना चाहते हैं। जो मनुष्य के भीतर धर्मवृत्तियाँ पैदा करना चाहते हैं, उसी तरह के पुजारी वहाँ रहें। वे अपने पूजा-पाठ का एक-दो घंटा पूरा करने के बाद, अपने गुजारे की व्यवस्था करने के बाद जो समय उनके पास बच जाता है, उसका इस्तेमाल इस तरह से करें, जिससे कि हमारी सामाजिक और राष्ट्रीय एवं व्यक्तिगत चरित्र की आवश्यकताओं

को पूरा किया जा सके। मंदिरों में जहाँ दूसरी तरह के खरच होते हैं—कभी बँगले बनते हैं कभी उत्सव होते हैं, कभी झाँकी बनती है, कभी क्या बनता है और उसी में लाखों रुपये खरच हो जाता हैं। उन सारे-के-सारे क्रियाकलापों में आंशिक किफायत की जा सकती है और इससे जो पैसा बचता है, उसको लोकमंगल की अनेक प्रवृत्तियों को आगे बढ़ाने के लिए प्रयुक्त किया जा सकता है और करना भी चाहिए। इस तरीके से धन की आवश्यकता, इमारतों की आवश्यकता, जनसहयोग की आवश्यकता मंदिरों के आधार पर ठीक तरीके से पूरी की जा सकती है।

यह सोच भी बदलें

मित्रो! जो व्यक्ति ऐसा ख्याल करते हैं कि भगवान निराकार हैं, उसकी मूर्तिपूजा की जरूरत नहीं है, उन लोगों से भी मेरी यह प्रार्थना है कि वे उस शक्तिशाली माध्यम की उपेक्षा नहीं करें। ये मंदिर हिंदू धर्म की श्रद्धा के केंद्र हैं। उनको

अब दिशा दी जानी चाहिए, नया मोड़ दिया जाना चाहिए। अब उनके विरोध करने की जरूरत नहीं रही। अब उनका खंडन करने की जरूरत नहीं रही। किसी जमाने में ऐसा रहा होगा कि लोगों के मनों में मूर्तिपूजा की बात, जो गहराई तक जम गई थी, उसको कमजोर करने के लिए संभव है, किसी ने मंदिर का विरोध किया हो और यह कहा हो कि इसमें मूर्तिपूजा की जरूरत नहीं है। उस आधार पर धन खरच करने की जरूरत नहीं है। हो सकता है, किसी जमाने में धर्मसुधारकों ने अपनी बात समय के अनुरूप कही हो, लेकिन मैं अब यह कहता हूँ कि हिंदुस्तान में गाँव-गाँव में छोटे-बड़े मंदिर बने हुए हैं। उनको आप उखाड़िएगा क्या? भगवान राम और भगवान श्रीकृष्ण, जिनको हमारी असंख्य जनता श्रद्धापूर्वक प्रणाम करती है, क्या उनका आप विरोध करेंगे? निंदा करेंगे क्या? नहीं, अब यह गलती नहीं करनी चाहिए।

साथियो! ठीक है, जैसा भी अब तक चला आ रहा है, उसे अब हमें सुधार की दिशा में मोड़ देना चाहिए। यह एक बहुत बड़ा काम है। विरोध करके नई चीज को खड़ा करना कितना मुश्किल है। एक चीज को गिराया जाए और फिर एक नई इमारत बनाई जाए, इसकी अपेक्षा यह क्या बुरा है कि जो बनी-बनाई इमारत है, उसको हम ठीक तरीके से इस्तेमाल करना सीख लें और उसी को काम में लाएँ। मंदिरों को अगर ठीक तरीके से काम में लाया जा सके और उनमें लगी पूँजी को ठीक तरीके से इस्तेमाल किया जाता रहे और इन दोनों का उपयोग लोकमंगल के लिए किया जाता रहे। उनमें ऐसे पुजारियों की, कार्यकर्त्ताओं की नियुक्ति की जा सकती हो, जो अपना एक-दो घंटे का समय पूजा-पाठ में लगाने के बाद बचा हुआ सारा समय समाज को ऊँचा उठाने में लगाएँ, तो मैं यह विश्वास के साथ कह सकता हूँ कि सरकार और दूसरी संस्थाओं के द्वारा जो लंबे-लंबे प्लान,

योजनाएँ बनती हैं, धन लगाती हैं, कार्यकर्त्ता नियुक्त करती हैं, फिर भी सारी योजनाएँ असफल हो जाती हैं, उसकी तुलना में यह योजना इतनी बड़ी, इतनी महत्त्वपूर्ण इतनी मार्मिक और सार्थक है कि हम राष्ट्र को पुनः उसके शिखर पर पहुँचा सकते हैं।

राष्ट्र का कायाकल्प कर सकते हैं ये देवालय

इसके लिए हमें केवल मंदिरों की दिशाएँ मोड़ने की जरूरत है। लोगों को समझाने की जरूरत है, प्रचार करने की जरूरत है, धमकाने की जरूरत है। अगर ये काबू में न आते हों, तो घिराव करने से लेकर बहिष्कार करने तक की जरूरत है। यह समझाने की जरूरत है कि इस धन का और इमारतों का हम अपव्यय नहीं होने देंगे। मंदिरों को हम अंधश्रद्धा का केंद्र नहीं बनने देंगे। हम धर्मभीरुता का पोषण करने वाले केंद्र के रूप में नहीं, वरन इन्हें धर्म की स्थापना का केंद्र बनाएँगे। यदि इन मंदिरों को धर्म की स्थापना का केंद्र बनाया जा सका, तो राष्ट्र की महती आवश्यकता पूरी

की जा सकती है। तब नया युग लाने में, नया समाज बनाने में, समाज की विकृतियों को दूर करने में और एक समर्थ राष्ट्र—समर्थ समाज बनाने के लिए इतने बड़े साधन हमारे हाथ सहज ही लग सकते हैं। इन बने-बनाए साधनों को विवेकशीलों को अपने अधिकार में, कब्जे में लेना ही चाहिए और उनको वह दिशा देनी चाहिए, जिससे कि भगवान वास्तव में प्रसन्न हों।

भगवान की जो सद्वृत्तियाँ इस विश्व में फैली हुई हैं, जिनसे कि शांति आती है और धार्मिक-भावना की वृद्धि होती हैऔर समाज समृद्ध होता है, उन भावनाओं को आगे बढ़ाने के लिए मंदिरों को केंद्र बनाया ही जाना चाहिए ताकि वास्तविक भगवान अपनी वास्तविक पूजा को देखकर प्रसन्न हो जाए और भक्ति करने, पूजा पाठ करने का उद्देश्य लोगों को समझ आ सके और लोग उसका समुचित फायदा उठा सकें। यह करने की बहुत अधिक आवश्यकता है और हमको

करना चाहिए। मंदिरों को जन-जागरण का केंद्र बनाया जाना चाहिए, उनका कायाकल्प किया जाना चाहिए। इतना करना यदि संभव हो गया, तो समझना चाहिए कि हमने लोक मंगल के क्षेत्र में एक बहुत बड़ी मंजिल पूरी कर ली और बहुत बड़े साधनों को हमने अपने आप इकट्ठा कर लिया।

ॐ शांति!

मुद्रक—युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा (उ. प्र.)